डॉ० कहानी मानावत

लोक-लोक में मीरा की खोज

साहित्य का इतिहास लिखने वालों में लोक पक्ष को ठीक ही नहीं जांचा-परखा इसलिए लोक जीवन में समाज, साहित्य, संस्कृति, कला, संगीत विषयक जो अलभ्य सामग्री छिपी पड़ी रही वह अनदेखी ही रह गयी। इसका परिणाम यह रहा कि जो कुछ लिखा गया वह अपूर्ण ही रहा। लोक पक्ष का यह समाज अपढ़ तथा परम्परानिष्ठ रहने के कारण अपने ही हाल में मस्त रहा जबकि पढ़े-लिखे समाज में जो कुछ लिखा जाता रहा वही पढ़ा और समझा जाता रहा और उसी को पूर्ण माना जाता रहा। यही कारण रहा कि लोक जीवन का समाज और पढ़े लिखे का समाज अलग-अलग समझे जाने लगा।

पढ़े लिखे समाज ने लोक जीवन को हर दृष्टि से अपने से अलग और पिछड़ा माना इसलिए पढ़ा लिखा समाज ही हर दृष्टि से और हर क्षेत्र में अगुवा बना रहा। वह यह भूल गया कि जो समाज उसकी तुलना में आधुनिक नहीं है वही मूल भारत की आत्मा है। उसी का बाहुल्य है। उसी के पास परम्परानिष्ठ समृद्ध संस्कृति है, वही भारतीय अन्तर चेतना है। परम्परागत ज्ञान के सारे स्रोत और असल दस्तावेज पोथियों में नहीं नुकेरे जाकर उसके मस्तिष्क में और वाचिक परम्परा द्वारा कण्ठ दर कण्ठ मुखरित बने हुए हैं।

यह ठीक ही कहा गया कि ''साहित्य की एक धारा उन लोगों की रही जो अपनी नामवरी से दूर रह अपने सृजन कर्म में निरन्तर लगे रहे और बदले में किसी पद प्रतिष्ठा, यश एवं धनसम्पदा की चाहना नहीं की। लोकधारा के इन साधकों ने पर्याप्त मात्रा में गीतों-गाथाओं, कथा-किस्सों तथा अन्य विधाओं में लिखा और उसे जनगंगा के हवाले कर दिया। लोक की कसौटी पर जो साहित्य खरा उतरता रहा, वह कंठ दर कंठ चलता रहा और कुन्दन-सा निखार पाता रहा। ऐसा जनजयी साहित्य ही कालजयी हो पाता है। यह लोक का ही अजूबा है कि जिन्होंने बहुत लिखा, बहुत गाया मगर कहीं अपनी छाप नहीं छोड़ी सो वे अनाम जाने ही बने रहे जबकि ऐसा भी हुआ कि जिन्होंने न गाया, न लिखा मगर उनकी छाप चलती रहने से वे आज भी बहुजानी बने हुए हैं। इनमें गुरु शिष्य के रूप में रैदास मीरा का नाम लिया जा सकता है।[१]

मीरा के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि जब तक यह चित्तौड़ में रही, पूर्णत: राज परिवार के काण कायदे और मर्यादा में रही किन्त पति भोजराज के निधन के बाद जब उसने चित्तौड़ से बिदा ले ली तब शेष चालीस वर्षीय जीवन उसने अपनी पद यात्राओं द्वारा विविध तीर्थों एवं धार्मिक स्थलों में ही बिताया। यह जीवन कोई कम अवधि का नहीं था, लगभग तीस वर्ष का रहा और अधिकांश में लोक समाज, लोक जन और लोक में विचरण करने वाले पहुंचे हुए साधु-सन्यासी, सन्तों-सन्ताणियों के सान्निध्य संगत और मेलजोल का रहा।

मीरा के सम्बन्ध में जो साहित्य अब तक प्रकाशित हुआ वह न तो उसके राज परिवार से जुड़े वैवाहिक जीवन की कोई पुख्ति जानकारी देता और न लोकनिधि के रूप में उसके लोक-लोक में विचरण करने का अध्ययन ही प्रस्तुत करता है। गम्भीर चिन्तन का विषय है कि मीराबाई के जन्म से लेकर वैवाहिक जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया वह नहीं के बराबर जनश्रुतियों के आधार पर लिखा गया। .परिवार के अन्दर की घटनाओं को लिपिबद्ध करने की तब कोई आवश्यकता रही और न ऐसी परम्परा ही देखने को बनती है इसलिए मीरा का यह पक्ष अजाना ही रहा और चित्तौड़ से जब मीरा निष्काषित हुई तब कोई सुखद वातावरण उसके पक्ष में भी नहीं था इसलिए शेष काल मीरा के लिए सर्वाधिक निराशाजनक ही रहा।

मीरा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष भक्ति के बहाने अध्यात्म में आकंठ निमग्न का रहा। विद्वानों ने मीरा के इस पक्ष को बहुत गम्भीरता से रेखांकित नहीं किया और साधु सन्तों के साथ गाने, बैठने और नाचने के रूप में लिखकर उसे जो गरिमा प्रदान करनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी वह नहीं की गयी। इस काल में मीरा का पीहर परिवार भी मीरा के प्रति अधिक सहानुभूति पूर्ण नहीं रहा, कारण कि जब वह अपने ससुराल में ही ठीक ढंग से नहीं स्वीकारी गई तो पीहर वाले इस मीरा को अपने कुल के अनुकूल मिजाज वाली नहीं मानने लगे। जाहिर है कि मीरा जब दोनों ही राजकुल की प्रिय भाजन नहीं रही तब लोक में भी राजपरिवार के विरुद्ध आगे आकर उसके प्रति सहानुभूति का दिखावा नहीं रहा। यों भी मीरा का अधिकांश समय तो नितान्त कृष्ण भक्ति में खोये रहने में व्यतीत होता था।

उसे बाह्य अगजग की अधिक परवाह नहीं रही। कृष्ण भक्ति में पूर्ण रूप से समर्पित मीरा बेसुध रह कर सुधहीन ही एकान्त साधना करती रही।

साहित्यकारों ने मीरा को सर्वाधिक लोकप्रियता उसके पदों के कारण दी। स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाने के कारण मीरा पद-रचना के रूप में ही सर्वाधिक चर्चित हुई। यह गहन खोज का विषय है कि विभिन्न पाठ्यक्रमों में मीरा के नाम के जो पद पढ़ाये जाते रहे क्या वे मीरा द्वारा रचे गये हैं? तब फिर लोक समाज में मीरा के नाम के जो पद, भजन आदि गाये जा रहे हैं क्या वे मीरा के द्वारा रचित हैं? इधर विद्वान लोग ही मीरा के प्रामाणिक पदों के संकलन की बार-बार आवश्यकता महसूस कर रहे हैं। ऐसे करते-करते कितने ही संकलन मीरा के पदों के प्रकाशित हो गये हैं, किन्तु तब भी कोई एक मत से यह कहने के लिए तैयार नहीं है कि कौनसे पद मीरा द्वारा लिखे गये हैं और कौन से क्षेपक हैं।

रैदास मीरा के वाट-गुरु अर्थात् राह-गुरु थे। चित्तौड़ से मीरा इनके साथ निकली और अन्त तक रैदास उसके साथ रहे, ऐसा कहा जाता है। हमारे यहां अनाम अथवा दूसरों के नाम और छाप से साहित्य सृजन की बड़ी जबर्दस्त परम्परा रही है। ऐसे कई लोग मिलते हैं जिन्होंने या तो बेनाम से लिखा या फिर उनके परिचय और संगत में जितने भी लोग आये उनके नाम छाप से लिखा। चित्तौड़ जिले के छीपों के आकोला गाँव के मोहनजी ने अनाम भाव से लगभग पचास हजार पदों की रचना की। ये पद उनके सम्पर्क में जो भी गायक, वादक और भजनीक आये उन्हें उनके नाम से लिख-लिख देते रहे। ऐसे करते-करते उन्होंने प्रेमदास, देवीलाल, जोरावरमल, गंगाराम, कालूराम, रामलाल, राघवलाल, टेकचन्द, शंकरलाल, लक्ष्मीलाल आदि कइयों की छाप से पद लिखे। चन्द्रसखी के नाम से भी कई पद मिलते हैं। उदयपुर में ही दशोरा परिवार में एक सज्जन ऐसे हुए जिन्होंने चन्द्रसखीमय बनकर चन्द्रसखी छाप के सौ पद लिखे।

लोक जीवन में मीरा के नाम से अगणित पद भजन कीर्तन प्रचलित हैं। मीरा के नाम से ब्यावलें, ढालें, धमालें, ख्यातें, बातें परचियां और फलियां भी कई मिलती हैं। राजस्थान के अलावा काठियावाड, गुजरात, सिन्ध, हरियाणा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तमिलनाडु, तेलगु, पंजाब, ब्रज, उत्तरप्रदेश आदि कई प्रान्तों में मीरा के नाम का डंका गाया, बजाया और नाचा जा रहा है। भजन गाने वाले अनेक ऐसे हैं जिनसे यह पता लगता है कि मीरा के नाम से जो भजन वे गा रहे हैं वे उन्होंने कब किससे, कहां सीखे? उनमें से प्रमुख गायक यह कहते हुए मिलते हैं कि भजन गायकी में जब वे पूरे डूब जाते हैं तब उन्हें अपनेपन का भान नहीं रहता और वे मीराजी के नाम से रात-रात भर गाते रहते। पहले से कोई पद उन्हें याद नहीं होता। उनके पास लिखा हुआ कोई कागज-पानड़ा भी नहीं होता तब अपने आप लाइनें की लाइनें उनके मन में आती रहती हैं और वे उसी-उसी धुन में गाते हुए मगन मस्त रहते है। गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, द्वारिका आदि में जहां मीरा एक से अधिक बार गई, वहां कई मीराधारी महिलायें ऐसी मिलेंगी जो निरन्तर नित नये-नये पद गाती हुई सुनी जा सकती हैं। जनजातियों में भी मीरा के नाम को कई रूपों में गाया जाता है वहां कौन मीरा के नाम से गवा रहा है अथवा वे कहां से शिक्षा-दीक्षा लेकर मीरा को गा रहे हैं।

अब जब लोक बोलियों का अधिक बोलबाला है और हर अंचल की बोली भाषा के रूप में अपना अस्तित्व देने को आतुर है तब मीरा के नाम से गाये जाने वाले साहित्य के सांगोपांग अध्ययन की सिलसिलेवार आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। मीरा के नाम से काव्य-रूप की जो विधाएं है उनके सम्बन्ध में भी नया प्रकाश पड़ेगा और छन्द अंलकार का जो अध्ययन अब तक हो चुका है उससे अधिक जानकारी और काव्य-रूपों के लक्षणों के बारे में जानकर भी साहित्य में अधिक अवदान दिया जा सकेगा।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org